Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2022 SHISRRJ | Volume 5 | Issue 4 | ISSN : 2581- 6306

21 वीं सदी की कविता का सामाजिक-राजनैतिक स्वर

डॉ. रमेश कुमार गोहे

सहायक प्राध्यापक, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय बिलासपुर (छ.ग.)

Article Info
Volume 5, Issue 4
Page Number : 79-91

Publication Issue :
July-August 2022

Article History
Accepted : 01 July 2022
Published : 20 July 2022

शोध-सारांश - कविता ने आधुनिक युग में अपने स्वरूप और स्वर में आमूलचूल परिवर्तन किया। लघु मानव से विश्व गाँव और ब्रह्मांडीय, अन्तरिक्ष जीवन की समस्याओं तक को अपनी कविताओं का विषय बनाया। मानव जीवन की तमाम समस्याओं से लेकर मनोविश्लेषण या मनोविज्ञान चिंतन को भी अपनी कविताओं के विषय बनाये। अंतर्दन्द्व से लेकर मानसिक पीड़ा और त्रासदी तक को अपनी कविता के विषय बनाये।कवियों ने निर्भीक होकर बड़ी से बड़ी और छोटी से छोटी समस्याओं पर लेखनी चलाई। जिम्मेदार समाज और जिम्मेदार व्यवस्थाओं पर प्रश्न उठाये। उसके नैतिक पक्ष पर जोर दिया। सामाजिक और सांस्कृतिक उत्थान दिशा में हमेशा ही कवियों के द्वारा परिवर्तन के गीत गए गए। तमाम क्रांतियाँ इन्हीं गीतों को गाकर हुईं। भारत में आजादी की लड़ाई भी कवियों के द्वारा लिखी गईं कविताओं को गाकर ही आजादी मिली।

प्रस्तुत शोध आलेख में हम 21वीं सदी की कविताओं में भाषा और परिवेश, संवाद व पात्र परिचय, वैयक्तिक चरित्र, कथानक, कविता की विषयवस्तु, समाज व संस्कृति का परिचय, रेखांकन कविताओं में स्त्री और उसकी भूमिका तथा अन्य सभी पक्षों जैसे दलित विमर्श की कविताएं, स्त्री विमर्श और परिवार विमर्श की कविताएं, कविता की भाषा-शैली, कविताओं पर भूमंडलीकरण का प्रभाव, राजनीतिक तथा बाहरी हस्तक्षेप का प्रभाव, पर्यावरण और उसकी चिंताओं के बिंदु, सामाजिक परिवेश का आंकलन आदि बिंदुओं को खोजने और वर्तमान समय और समाज की परिस्थितियों से उनका तादात्म्य स्थापित करने की कोशिश करेंगे।

बीज शब्द : हिन्दी कविता, सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश, भूमंडलीकरण, विमर्श, आधुनिक साहित्य।

कविता ने इस समाज को अपनी वैचारिकी, विषयवस्तु और आर्तस्वर के साथ हमेशा ही उन्नति के पथ पर अग्रसर किया है। समय-समय पर लोकगायक कवियों ने सामाजिक न्याय, पुनर्जागरण और नैतिक मूल्यों के विकास के लिए इस समाज को अपने स्वरों के माध्यम से ललकार और फटकार लगाई है। कविता ने अपनी यात्रा के बढ़ते क्रम में अपने तमाम स्वरों को बदलते हुए कई मूल्यों को समाहित किया। बड़े से बड़े और छोटे से छोटे विषयों को अपने स्वरूप में समाहित किया। लोकगायक कवियों ने उन सभी समस्याओं को अपनी कविता के विषय बनाये, जिन्हें एक समय विशेष में महत्वपूर्ण नहीं समझा गया था। इन्हीं सब परिवर्तनों से काव्य की प्रासंगिकता और समाज में कवियों का स्थान निरंतर ही श्रेष्ठ होता रहा। कवियों ने समय-समय पर विभिन्न सामाजिक समस्याओं को अपनी लेखनी का स्वर बनाया। चाहें फिर वह वीरगाथाकाल की कविताएँ हों, भक्तिकाल या रीतिकाल की कविताएँ हों या फिर चाहे आधुनिक हिंदी कविता के लगातार परिवर्तित होते वाद के युग की कविताएँ हों। "साहित्य समाज का दर्पण है।" परिभाषा के आधार पर कविताओं में समाज, पर्यावरण और वैश्विक मूल्यों की पड़ताल करेंगे।

21वीं सदी के प्रारंभिक समय में सबसे पहले विनोद कुमार शुक्ल की कविताओं पर दृष्टि डालते हैं। उनका संग्रह 2001 में 'कविता से लंबी कविता' के नाम से प्रकाशित हुआ। जिसमें रायपुर बिलासपुर संभाग, टहलने का वक्त, विचारों का विस्तार इस

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

तरह हुआ, तीन मीटर खुशबू के अहाते में उगा हुआ गुलाब, शरारतन मैंने मुड़कर देखा एक पेड़ को, लगभग जय हिंद, कितना कुछ नुकसान हानि, काम पर जाती हुई औरत, जिस सड़क पर मैं चला गया और आर पार शायद इसी को कहते हैं, कविताएं हैं।

इन सभी कविताओं में विनोद कुमार शुक्ल की चिर परिचित लंबी कविताओं के रूप में मुक्तिबोध की शैली और विनोद कुमार शुक्ल का समय कविताओं में उल्लिखित है। अपने समय और संस्कृति को पूरी ईमानदारी से लिखने का दायित्व कवि ने सफलता पूर्वक निर्वहन किया है। हालांकि सभी कविताओं के विषय और उनकी पृष्ठभूमि अलग-अलग होते हुए भी सभी की जमीन अपने जीवन के भोगे हुए यथार्थ और सामाजिक जीवन अनुभव की पीड़ा ही है। पहली कविता रायपुर बिलासपुर संभाग इसी कविता में कवि ने आधुनिकता के बाद उत्तर आधुनिक समय की पड़ताल करते हुए नगरीय सभ्यता कैसे ग्रामीण सभ्यता से हमें विलग होने पर मजबूर कर रही है। उसकी विडंबना दिखाई दे रही है।

"रायपुर बिलासपुर संभाग,
हाय! महाकौशल, छत्तीसगढ़ या भारतवर्ष
इसी में नांद गांव मेरा घर
कितना कम पहुंचता हूं जहां
इतना जिंदा हूं / सोच कर खुश हो गया कि
पूछूंगा बार-बार / आखिरी बार बहुत बूढ़ा होकर
खूब घूमता जहां था / फलांगता छुटपन
बचपन भर / फलांगता उतने वर्ष
उतने वर्ष तक / उम्र के इस हिस्से पर धीरे-धीरे
छोटे-छोटे कदम रखते हैं
जिंदगी की इतनी दूरी तक पैदल
कि दूर उतना है / नांद गांव कितना अपना[1]

सचमुच नगर ने हमारी संस्कृति और हमारे गांव हमसे लील लिए हैं। चाहे औद्योगिकीकरण हो या कस्बाई विकास या नौकरी की खोज में नगरों की ओर पलायन हो। कारण कोई भी हो लेकिन गांव तो सूने हो ही रहे हैं। जहां लौटने की आश हमेशा बची रहती है, पर लौटने का समय नहीं मिलता। कविता में यह एक काव्यांश आता है।

"मर गया प्रदेश",
मर गई जगह पड़ी हुई उसी जगह
इतना ही नहीं काफी
जितना अकेला एक गौठियाँ काफी
फिर मरे हुए दिन की परछाई रात अंधेरी[2]

यहां बरबस ही मुक्तिबोध की पंक्तियां याद आने लगती हैं "मर गया देश अरे जीवित रह गए तुम!" दरअसल वर्तमान, इतिहास में बदल रहा है और कुछ चीजें इतिहास में दफन होती जा रही हैं। विनोद कुमार शुक्ल की कविताओं में पीछे छूट जाने वाले गांव के साथ-साथ गाय, बैल, बकरी, कुत्ते, भैंस, बैलगाड़ी, किसान जीवन, गांव के भोलापन के साथ-साथ ही नगरीय जीवन शैली का छद्म रूप उभर कर सामने आता है।

"बिना घड़ी देखे
मैं भूतकाल होने की प्रक्रिया में
इन्हें कविता में शामिल करना था
इन्हें कविता में शामिल करना है
उसका कारोबार / उसका मकान

उसकी कॉलोनी / उसका दृश्य
वह पेड़ बदलते हुए
वह चिड़िया / जमीन बदलते हुए
वह आदमी बदलते हुए
मर्जी माफिक[3]

जैसा कि विनोद कुमार शुक्ल की कविताएं लंबी होती हैं और वे निरंतर बिंब बदलते हुए लोक, नगर, देश-विदेश और ब्रह्मांडीय समस्याओं का चित्रण करती हैं। एक कविता यहां देखते हैं जो ऐसे ही बिम्बों की है।

मिल के चालू होते ही
गोल ढक्कन चंद्रमा का खुलकर
आकाश में एक तरफ शरद पूर्णिमा जैसे
निकलीं लहराती किरणेंचिमनी से
लहराता धुआं चमकदार किरणों का
आकाश में इकट्ठा होकर किरणों का बादल
उजली धुंध सन्नाटा उजाला आधी रात
तालाब उजाला गहरे तक
किनारे के उथले में चमकदार
छोटी-छोटी मछलियों की
चमकदार छोटी-छोटी हलचल[4]

यहां कवि ने एक ही कविता में सारे बिम्ब उकेर कर रख दिए हैं। लगभग जय हिंद कविता में चारित्रिक भ्रष्टाचार और छद्म देशभक्ति की भावना का वर्णन है।

"जाते वक्त जय हिंद था,
लगभग जय हिंद,
सरासर जय हिंद
एक राजनीतिक नमस्कार भाई साहब।"[5]

आज हम तीसरे विश्वयुद्ध की आशंकाओं से जिस तरह से ग्रस्त हैं। उसे आर-पार शायद इसी को कहते हैं कविता में लिखा है।

बूट के अंदर एक उभरा हुआ खेला था
और चूहा स्वतंत्र होने की अपनी ही उछल कूद से
बूट के अंदर मारा गया
मैं रोने लगा अमेरिका हाय हाय
हमारे बच्चे अभी होने वाले थे।[6]

लीना मल्होत्रा का 2016 में प्रकाशित काव्य संग्रह 'नाव डूबने से नहीं डरती' में समसामयिक समस्याओं को उकेरने वाली कई कविताएं हैं जो अपने समय, समाज और चरित्र का चित्र खिचातीं हैं। इन्हीं कविताओं के कुछ शीर्षकों जैसे सहज ही नजरें खोलने वाले होते हैं- जैसे संग्रह की कविताएं महानगर में चारपाई, जाति के जूते, विस्थापन, पराशपानी के परगट बाबा, युद्ध, खेल, सिगरेट और कविता सच्चा स्त्रीवाद, बेरोजगार, गर्भपात कर दिए गए बच्चे, भ्रम, जादू नहीं था जीवन, बुरी नजर का टीका, प्रेम पत्र,यातनाएं आदि कविताएं महत्वपूर्ण है ।

"अच्छा।
मल्होत्रा जी कानपुर वाले

बहुत से लोग जानते हैं मल्होत्रा को
और कानपुर में किए गए उनके कारोबार को
मैं नहीं जानती उनका यह रूप
मैं फिर भी इसे ढोती हूं
धीरे-धीरे यह जाति
एक पुराने वस्त्र की तरह
मेरे नाम की देह से लिपटी रहती है
इसे पहनकर मेरा नाम
सुख की नींद सो जाता है
इसकी उधड़ी हुई सीवनमें
उंगली डालकर खुजली करना आसान है। (7)

विस्थापन कविता में एक अजीब विडंबना उभर कर सामने आती है। कोई अपना घर, अपनी जमीन कहां छोड़ना चाहता है। उसका लगाव और प्रेम, उसका मोह कब छूट टूटता है, छूटता है अपनी जमीन और घर आंगन से

"ऐसे में एक बुढ़िया
पूरी तरह पूरी तन्मयता से घर बुहार रही थी
आंगन लीप रही थी मोह के गोबर से
दीवारों के श्रृंगार के लिए
उपले बना रही थी अंतिम बार
स्मृति के लिए घर सजा रही थी
विस्थापित होने से पहले।"[8]
"किसी बेरोजगार को देखा है
जिसके सारे प्रयास
असफलताओं में टूटकर बिखरते चले जाते हैं।"[9]

निश्चित ही बेरोजगारी एक बड़ी समस्या तो है ही। इसके लिए अपने जीवन के हिस्से में बेरोजगारी का अनुभव होना जरूरी है, तभी आप बेरोजगारों की समस्याओं को समझ सकते हैं और इसी के साथ कविता सलवटें में एक दुकान के काम पर लगा हुआ मजदूर, जिसे निरंतर यह डर लगा रहता है कि किसी भी गलती की वजह से उसका काम न छिन जाए। वैसे यह कविता कई बिम्बों का निर्माण करती चलती है। जिसमें बेरोजगारी के साथ आधुनिक परिवेश, संस्कृति का परिचय कराती है।

"जहां भय उसे तीन तीन कोणों से डराता है
कहीं उसे कोई चोर साबित न कर दे
कहीं उसे काम से निकालना दिया
जाए कहीं उसकी भूख चेहरे पर ना आ जाए।[10]

2008 में मुनव्वर राणा का अकेला हो गया संग्रह प्रकाशित हुआ, जिसमें उनकी चिर परिचित शैली की गजलें प्रकाशित है । संग्रह की भूमिका आत्मवक्तव्य में "हम अपने गांव की गलियों में सावन छोड़ आए हैं। से लिखी गई है । आज सचमुच में शांति, सौहार्द, सद्भाव, प्रेम,आपसी सामंजस्य की जरूरत है। सांप्रदायिक मतभेदों को खत्म कर हमें विश्व बंधुत्व और मानवता के बारे में सोचना ही चाहिए।

मुनव्वर राणा लिखते हैं कि –

"गले मिलने को आपस में दुआएं रोज आती है

अभी मस्जिद के दरवाजे पर मांएं रोज आती हैं।"[11]

हिंदी और उर्दू विवाद पर अपनी कलम चलाते हुए उसे सगी बहनों के रूप में पिरो दिया गया है।

लिपट जाता हूं मां से और मौसी मुस्कुराती है
मैं उर्दू में ग़ज़ल करता हूं हिंदी मुस्कुराती है ।[12]

गरीबी भुखमरी और बेरोजगारी के आलम पर सहज ही कलम चलती है तो लिखती है।

फरिश्ते आकर उनके जिस्म पर खुशबू लगाते हैं
वो बच्चे रेल के डिब्बों में जो झाड़ू लगाते हैं।[13]

हम और आप हर सफ़र में इन नज़रों से रूबरू होते रहते हैं ।गजल में राष्ट्र प्रेम और देश सेवा पर लिखा है कि-

चलो चलते हैं मिल जुल कर वतन पर जन देते हैं
बहुत असं है कमरे में बन्दे मातरम कहना ।[14]

जल, जंगल और जमीन से जुड़ी एक ऐसी सभ्यता जो विकास की मुख्य धारा में आज भी पूरी तरह शामिल नहीं हो सकी है। हम उसकी समस्याओं को बाहर से देख कर जितना महसूस कर सकते हैं,लेकिन उसकी हकीकत से पूरी तरह नहीं जुड़ पाते जितना कोई उन्हीं के बीच का व्यक्ति देख समझ सकता है। ऐसे समय में आदिवासी जनजीवन विमर्श पर 2017 में अनुज लुगुन की प्रकाशित एक लंबी कविता 'बाघ और सुगना मुंडा की बेटी' में रवि भूषण की एक लंबी भूमिका भी है। जिन्होंने आज के समय में अनुज लुगुन की कविता का महत्व प्रतिपादित किया है। "कविता में आरंभ से अंत तक कोई बिखराव नहीं है। चिंतन और विचार के यहां कई सूत्र हैं। पहली बार कविता में गणतंत्र को एक सार्थक रूप में देखा गया है। संघर्षशील चेतना का विकास करने वाली यह कविता मुक्ति की आकांक्षा की कविता है।"[15]

आज जंगल के शिकारी कौन हैं? कौन शिकार कर रहा है? क्या वास्तव में कवि की चिंता उन शिकारियों की ओर संकेत करती है? जिनके शिकार आदिवासी और जंगल हो रहे हैं।

कवि लिखते हैं –

उस चीखती हुई सन्नाटे में
कांच की चूड़ियों के टूटने की खनक
एक संबोधन के साथ पसरी
ओरीडा हडम / तुम तो कहा करते थे
जंगली जानवर बच्चों और औरतों पर हमला नहीं करते
लेकिन इतना बड़ा और अचानक हमला
कोई आहट तक नहीं हुई
ओह / ओ सिंह बोंगा बोंगा
ओ धर्मस / ओ मारंग बुरु
ओ शिकारी देवता
हमसे क्या गलती हुई।[16]

कविता पढ़ते हुए मुझे बस्तर में बाघ की याद आ जाती है जिसमें कोसी का शिकार एक बाघ कर लेता है। सचमुच यह आदिवासी अपने जीवन को इस तरह से, इस रूप में खत्म कर देने के लिए कितने मजबूर हैं । फिर भी जंगल ही उनका जीवन और रक्षक है। क्या उनका विश्वास अब जंगली जानवर तोड़ रहे हैं और उनका शिकार करने लगे हैं । अगर हां तो उन जंगली जानवरों को किसने परेशान किया है? इस विषय पर कई फिल्में भी बनी हैं। पर आदिवासी जनजीवन और उनकी समस्याओं पर अनुज लुगुन की यह कविता अद्वितीय है।

अनुज लुगुन की ही तर्ज पर जसिंता केरकेट्टा का काव्य संग्रह 'जड़ों की जमीन'2018 में प्रकाशित हुआ जिसमें आदिवासी जनजीवन पर एक आदिवासी और स्त्री कवयित्री की दृष्टि से आंकलन हुआ है। यह एक ऐसा काव्य संग्रह है। जो हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में एक साथ एक ही किताब में प्रकाशित है। कवयित्री की अनूठी पहल है। जो आज की स्थिति में अंग्रेजी भाषा की आवश्यकता या संस्कृति की ओर भी इशारा करती है।

इस संग्रह में भी जल, जंगल और जमीन से जुड़ी संस्कृति, जीवन शैली और उसकी समस्याओं के चित्र मिलते हैं। इसकी कुछ कविताओं के शीर्षक सीधे वहां की सभ्यता से जुड़े मिलते हैं। जैसे- मातृभाषा की मौत, शहर और गाय, जानवरों के इतिहास में, शहर की नसों में, शहर की नाक, जंगल कहता है,धुंआती लकड़ी, महुआ चकित है, घास और फूलों के लिए, रोटी, आधी स्त्री, जड़ों की जमीन आदि प्रमुख कविताएं हैं। जिनमें सीधे आदिवासी सभ्यता का चित्र दिखता है। यहीं कहीं इसी शहर में कविता में जंगल के कटने की विडंबना है और उसके साथ ही पशु-पक्षियों के जीवन पर संकट की आशंका। इसके साथ ही यह आदिवासियों के उजड़ने की ओर भी संकेत करती है।

गायब होती गौरैया ने देखा
शहर के अंदर
कटकर गिरा कोई जंगल
जिसके निशानों के पास
बैठकर उसकी स्मृति के साथ
यह शहर अपनी शाम गुजारता है।[17]

आज के समय में एक समृद्ध होती हुई भाषा, कई छोटी भाषाओं को लील रही है और इसका कारण है उन भाषाओं में शिक्षा की व्यवस्था का ना होना । आज राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने इस विषय पर ध्यान देकर प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा व्यवस्था करने का बीड़ा उठाया है।

भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित संग्रह जड़ों की जमीन के कवर पृष्ठ पर लिखा है- "गहरी, अचेतन, अनकही भावनाओं को शब्दों और छवियों में पिरोने की जसिंता की कला अनूठी है और अपनी इसी कला से वह इन भावनाओं को वास्तविकता का रूप देती है।"[18]

वास्तव में जसिंता के लिए यह वक्तव्य सटीक बैठता है। उनकी कविताओं में जमीन की गहराई है। जहां वह इस समूची सभ्यता का आंकलन करती हुई, हर एक के चरित्र का उद्घाटन करती नजर आती है। आदिवासी जीवन का महुआ से बड़ा लंबा जुड़ाव है। वह भोजन भी है, नशा भी है, पैसा भी है और सेहत भी है।

धूप भी चुन रही है
महुआ साथ-साथ
जवनी की मां थकती नहीं
चुनती है महुआ शाम तक[19]

साम्राज्यवादी ताकतों और सत्ताओं का चरित्र और मानव सभ्यता का विकास का चरित्र एक कविता में सामने आया है।

जो कहते हैं
थोड़ा सा झूठ
थोड़ी सी बेईमानी
जरूरी है
दुनिया में चलने के लिए
झूठ के साम्राज्य के बनिहार है वे। (20)

अभी हाल ही में तुर्किये के भूकंप की घटना में लाखों लोग मर गए हैं और धरती पर ऐसे कई भूकम्पों की आशंकाएं की जा रही हैं। वैज्ञानिक धरती पर कई भूकंप के खतरों को भाप रहे हैं और इसके कारणों में धरती पर बम, बारूद के धमाकों और अंधाधुंध निर्माण कार्यों को बता रहे हैं। इन्हीं संकेतों की ओर जसिंता की एक कविता वापसी है-

थोड़ा समय चाहिए धरती को
और एक दिन मुक्त कर लेगी
वह खुद को तुम्हारे नियमों से
भर लेगी अपने सारे घाव
उगा लेगी फिर से हरियाली
बुला लेगी फिर से
लुप्त हो चुकी आदिम सभ्यता को
और लुप्त हो चुकी
उनकी भाषाओं को।[21]

2019 में उदय प्रकाश का संग्रह अंबर में अबाबील प्रकाशित हुआ है। इसके शीर्षक में ही जंगल कट जाने की विडंबना सामने आकर खड़ी हो जाती है कि पक्षियों का घर उजड़ गया है। इस शीर्षक पर कवि का कहना है कि "21वीं सदी के ये शुरुआती दशक किसी शांत, एकांत और अलग-थलग बसेरों की ओर युद्ध मुद्रा में जाते उन टैंकों या बुलडोजर ऐसे थे जिनका इंजन निर्बलों के लहू से मलबों और लाशों के ऊपर चलता था।"[22]

ठीक इन्हीं बातों के साथ कवि अपनी कविताओं को अबाबीलों की तरह मान रहे हैं जिनकी कोई जगह नियत नहीं रही। "अंबर में अबाबील ऐसी कविताएं जिन्हें कभी किसी कागज पर भौतिक जगह नहीं मिली। ऐसी अबाबीलें जिनके घोसलों, शरण्यो के हर ठिकाने पर पाबंदियां आयत की गई। जिन पेड़ फूल इमारतों मेहराबों में वे दुनिया का सबसे नायाब अपना घर या घोंसला बना सकती थी वहां उनका या तो आना वर्जित कर दिया गया या वेठिकाने समय की तेज अंधड़ में एक सामान्य स्वाभाविक प्रक्रिया में स्वयं ही विलुप्त हो गए।"[23]

इस संग्रह की तमाम कविताएं विश्व मानव और उनकी संभावना समस्याओं पर केंद्रित होते हुए भी अपने लोक जीवन का स्पर्श करती ग्रामीण जनजीवन का चित्र प्रस्तुत करने के साथ-साथ ही नगरीय महानगरी और ग्रामीण संस्कृति का विवरण करती है। अपनी भाषा और संस्कृति को खो देने की विडंबना देखिए-

अब जो भाषा वहां चल रही है
उस भाषा में जितनी हिंसा और आग है
नहीं बचेगा उसमें
यह तुम्हारा जर्जर बूढ़ा शरीर।[24]

वैसे इस संग्रह में बड़े-बड़े शीर्षकों से 1, 2 के क्रम में कई कविताएं हैं, जिनकी भावभूमि एक जैसी है इन्हें लंबी कविता के रूप में भी रखा गया जा सकता है। कुछ शीर्षक इस तरह हैं- विष्णु की खोज में, गरुड़, सिद्धार्थ, कहीं और चले आओ, अरुंधति, किसी पथ्य या दवा जैसी हंसी, क और तिब्बत। कवि की चिंता क बचाने की है। यहां क से आप कई संकेतों को महसूस कर सकते हैं।

"कोई है?
दुनिया की किसी भी भाषा का कोई मानुष
जो बचा सके
मेरी कविता में से मेरा क।"[25]

लगातार हो रहे युद्धों से धरती पर समूल नष्ट हो जाने की आशंकाएं कविताओं में भी है।

"एक दिन ऐसा होगा।
शत्रुओं द्वारा दागी गई मिसाइलों
और अपनी परिधि से विचलित
अपने जीवन भर की व्याकुलता
और थकान में टूटकर गिरे हुए धूल के धूमकेतुओं के गड्ढों से
यह सारी पृथ्वी भर जाएगी।
एक दिन ऐसा होगा कि पहचानना मुश्किल होगा
कि कौन सी है पृथ्वी
कौन सा है चंद्रमा।"[26]

सचमुच हमारी धरती विनाश के बहुत करीब है। धमाकों से रूबरू मानव सभ्यता लगातार तहस-नहस हो रही है। एक दलित और स्त्री कवयित्री की दृष्टि से यह दुनिया कैसी दिखती है? उसका आंकलन हमको सुशीला टाकभौरे की कविताओं में देखने को मिलता है। उनका 2021 में जो काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ। उसका शीर्षक'प्रतिरोध के स्वर' रखा गया है। जाति के आधार पर मिलने वाली हिंसा,स्त्री होने के आधार पर किए गए किए जाने वाले बलात्कारों की ऐसी ही एक कविता देखिए, सब के हित के लिए-

"वह जगह खोजो
ऐसी जगह बनाओ
जहां जाकर
कुछ देर के लिए भूल जाएं
दलित उत्पीड़न को
छलकपट के व्यवहार को
अन्याय, अत्याचार, बलात्कार,
हिंसा,आगजनी की घटनाओं को।"[27]

गरीबी और आभूषण लालसा पर प्रेमचंद गबन पहले ही लिख चुके हैं और कवयित्री सिल्वर जुबली कविता में लिखतीं है – "गहना ! पागल हुई है क्या, जानती नहीं, सोने का भाव?"[28] गरीबी और आभूषण लालसा पर प्रेमचन्द गबन पहले ही लिख ही चुके हैं और कवयित्री सिल्वर जुबली कविता में लिखती हैं।

"गहना! पागल हुई है क्या,
जानती नहीं,
सोने का भाव?[29]

स्त्री चेतना और संबल पर महादेवी वर्मा ने 'नारीत्व का अभिशाप' लिखा, जिसमें उनकी भी चिंताएं यही थीं। पर आज भी हमारे समाज में वे चिंताएं जिन्दा हैं। बल्कि बाजार ने उनमें और पैर लगा दिए हैं। अब वे सघन चिंताएं बन गई हैं।

खुश होती है औरत
गहने, कपड़े, सौंदर्य प्रसाधन से
खुद को सजाकर
नित नए उपक्रमों से निखारकर
दिखाती है खुद को अनुपम
वह किसको दिखाती है यह सब?
औरत ढूंढती है, अपनी प्रशंसा

पुरूष की आंखों में / क्यों?[30]

21वीं सदी की सभ्यता, नैतिकता आज कहां आकर ठहर गई है -

"कितना बदलाव हो रहा है
इंसान में
आदर्श, त्याग, सर्वस्व-समर्पण,
दुर्लभ हो रहे हैं, नई पीढ़ी में !"[31]

21वीं सदी में कोरोनावायरस कोई कभी नहीं भूल सकता। लाकडाउन जैसी स्थिति में भी सफाई कर्मी अपना काम कर रहे थे

"सब बैठे हैं
अपने घरों में सुरक्षित
इनको नहीं मगर
यह सुविधा
समाज को सुरक्षित रखने हेतु
करना है हर दिन सफाई काम"[32]

2022 में प्रकाशित पुष्पा विवेक का यह पहला ही काव्य संग्रह है। जिसमें 104 कविताएं हैं। ये सभी कविताएं रोजमर्रा के जीवन से जुड़ी समस्याओं, स्त्री जीवन की समस्याओं और अधिकारों, दलित जीवन के सामाजिक अधिकारों आदि विषयों के साथ-साथ ही और तमाम समस्याओं का चित्रण करता यह काव्य संग्रह 21वीं सदी की 'पथरीली राहों' पर चल निकला है।

निराला की 'तोड़ती पत्थर' कविता से थोड़ी और आगे स्त्री आगे की स्त्री यहाँ अंकित हैं-

"पत्थर तोड़ती
ये औरतें
गारे में लिपटी है औरतें
सड़क बुहारती औरतें
शोषण की शिकार ये औरतें
घर में भी खटती है औरतें
दहेज के लिए जलतींये औरतें
अधिकारों को तरसती है औरतें।[33]

कवयित्री स्त्री शिक्षा के प्रति भी सजग हैं और कविताओं में भी कई जगह यह विषय नजर आता है।

"पढ़ लिख कर ही देश की नारी
बदलेगी इतिहास
बागडोर जब हाथ में लेगी
करेगी सबका उद्धार।"[34]

कवयित्री की कई कविताओं में आशावाद भी दिखाई देता है।

"जिंदगी में आएगी
फिर एक नई सुबह
आदमी की कोशिशों में
है राज सफलता का छुपा"[35]

2022 में ही विमलेश त्रिपाठी की चयनित कविताओं का संग्रह भी प्रकाशित हुआ है। इन कविताओं को समकाल की आवाज कहा गया है "ऐसी आवाज वर्ग, जाति, धर्म, लिंग, क्षेत्र जैसे विभाजनों के ऊपर, सत्ता प्रतिष्ठानों सत्ता के केंद्रों, शहर, महानगर के अभिजात्या इलाकों से दूर, गांवों, कस्बों, जनपदों में बसे लोक का प्रतिनिधित्व करती है। समकाल की आवाज अपने समय व समाज के आभासी यथार्थ को ही नहीं दिखाती है बल्कि उसके सार तत्व तक ले जाती है और मानवीय संवेदनाओं का विस्तार होता है। उस आवाज में किसी तरह का तामझाम या दिखावा नहीं होता, वह पहाड़ी नदी की तरह पारदर्शी होती है।[36]

संग्रह की तमाम कविताएं वर्तमान जनजीवन की सार्वभौमिक समस्याओं का आंकलन करती हुई चलती हैं। जिनमें बेरोजगारी, अंधेरा महानगरीय जीवन शैली, कवि और कविता, स्त्री, किताबें, ईश्वर और अन्य तमाम विषय केंद्रित है।

"मेरे पास शब्दों की जगह
एक किसान पिता की भूखी आंत है
बहन की सूनी मांग है
छोटे भाई की कंपनी से छूट गई नौकरी है
राख के ढेर से कुछ गर्मी उधेड़ती
मां की सूजी हुई आंखें हैं।"[37]

हिंसा और प्रेम की विडंबना में फंसे हुए हम अपनी नियति को जीने के लिए मजबूर हैं। परिवर्तन को स्वीकार करना हमारी नियति है।

"एक समय मर रहा है
और अपने जीने को सीने से चिपटाए
लोग सोने की तैयारी कर रहे हैं।"[38]

रोजमर्रा के जीवन की समस्याएं ही सपने में भी चलने लगती हैं और हम अपनी नींद भी निश्चिंत होकर नहीं सो पाते। आज का समय इस रूप में आ चुका है।

गांव से चिट्ठी आई है
और सपने में गिरवी पड़े खेतों की
फिरौती लौटा रहा हूं।"[39]

2022 में कालीचरण स्नेही का प्रतिनिधि काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ है। जिसमें आज के सामाजिक परिवेश की विसंगतियों पर कई कविताएं हैं। जिनमें जाति, धर्म, वर्ण, रंग, आदि मतभेदों और सामंजस्य पर कई कविताएं हैं। कालीचरण स्नेही की कविताओं के धार बेहद तेज है और वे कविताएं संग्रह में लोक जीवन की विडंबनाएँ, लोक परंपराएं, उत्सव और उसकी सांस्कृतिक पहचान भी खूब मिलती हैं। इनकी कविताओं में स्त्री विमर्श भी है। एवरेस्ट कविता में कवि इन विडंबनाओं का चित्र खींचते हैं–

"दलित हूं मैं,
आदिवासी हूं मैं,
लेकिन पहले भारतवासी हूं मैं।"[40]

इनकी कविताएँ जाति-पांति की व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, छुआछूत आदि समस्याओं पर लगातार प्रहार करती हैं। कविता का लोकतंत्र में देश के लोकतंत्र का वर्णन है जिस पर लिखते हैं-

"अब राजा महारानी के पेट से नहीं
बूट में रखी मत पेटी से पैदा होता है।"[41]

असमान व्यवस्थाओं पर भी कभी तंज कसते हैं और लिखते हैं - वह समाज अच्छा नहीं है

जिसमें औरत नर की दासी हो

वह इंसान भी अच्छा नहीं हैं
जो कपटी कुटिल कुचाली हो।[42]

21वीं सदी में जाति-पांति की वजह से असमानता पर भारी व्यंजना इस कविता में मिलती है, जिसमें प्रेमचंद की कई कहानियां और उपन्यास बरबस ही याद आ जाते हैं। श्रेष्ठ जातियों के सम्मान को कब, कहाँ और कैसे ठेस लगती है? कविता में साफ देखने को मिलता है। अगर आज भी किसी गांव में ऐसा है तो यह 21वीं सदी की सबसे बड़ी विडंबना है।

घर अपना चबूतरा अपना
चबूतरे पर बिजी खटिया अपनी
लेकिन आश्चर्य कि हम अपनी ही
खटिया पर नहीं बैठ सकते
अगर बैठ गए तो
गांव का मुखिया
लाल-पीला हो जाएगा
15वीं सदी में खो जाएगा
विरोध जताने पर
देश में एक बार फिर
बेलछी कांड हो जाएगा
21वीं सदी में प्रवेश करते हैं अपने गांव
अभी हमारा अपनी ही खटिया पर बैठना बर्दास्त नहीं कर पाते।[43]

वास्तव में 21वीं सदी में कविता कहां तक पहुंची है यह एक प्रश्न है। लेकिन हम कहां तक पहुंचे हैं यह भी एक अनुत्तरित और ज्वलंत प्रश्न है। 2022 में ही हंस प्रकाशन दिल्ली से सुशील द्विवेदी का काव्य संग्रह डायरी का पीला वरक प्रकाशित हुआ है। सुशील द्विवेदी एक युवा कवि हैं, जिन्होंने अपने जीवनानुभवों, आत्मसंघर्षों से निर्मित मनोभूमि पर कविताओं के बीज रोपित किए हैं। और ये कविताएं पाठकों नजरों का सानिध्य पाकर फलेंगी फूलेंगी। किताब के कवर पर एक हल का चित्र है जो केले के पेड़ों के सामने बिना किसान और बैलों के खड़ा है। यह चित्र कई मायने रखता है। कविताओं में गांव भी है और महानगर भी।दोनों की जीवन शैली और चरित्र भी हैं।अगर सीधे शब्दों में कहा जाए तो संग्रह वर्तमान मानव सभ्यता का चित्र और चरित्र दोनों पेश कर रहा है। जिसमे कोई बनावट नहीं है। कविताएं खरी खरी हैं, सीधी समझ में आने वाली।

भाषा न तो भद्दी है ना ही उसमें कोई झूठी बुनावट–बनावट है। सीधी सपाट भाषा शैली में मानव सभ्यता के वर्तमान चरित्र का आंकलन करने वाली ये कविताएं दरअसल एक पाठक को अपने ही आसपास के वातावरण समय और समाज के साथ जोड़ती हैं। एक प्रेमी के लिए इस दुनिया में उसके प्रेमी और प्रेम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होता। उसके प्रत्येक कार्य में वह अपने प्रेम और प्रेमी या प्रेमिका की ही अनुभूति महसूस करता है। सामान्य शब्दों में अपने प्रेमी के नाम के अक्षर खोज लेता है, कभी उसके नाम के साथ अपने नाम के अक्षर जोड़ कर कोई एक नया नाम बना लेता है, जीवन की कई नई कल्पनाओं में उड़ान भरने लगता है। प्रेम में आकंठ डूबा व्यक्ति प्रेम के अतिरिक्त कुछ नहीं सोचता। यह कविता कई अलग अलग रूपों में अपने प्रेम और प्रेमी को ही महसूस कर रही है।

सुबह आशु ने किताब दी
मैंने पढ़ना शुरू किया
और शाम तक
सिर्फ 'हे... रा ' पढ़ा
उसे अंडर लाइन किया

एक नहीं, कई –कई रंगों से।[44]

यह कविता वर्तमान समय की जिन विडंबनाओं पर लिखी गई है उसकी चिंताएं अलग अलग कई दिशाओं में जाकर विस्तार पाती हैं। कवि वर्तमान समय में चल रही संस्कृति और समय परिवर्तन की सपाट बयानी के साथ साथ ही हमें सचेत भी कर रहे हैं कि इस समय में प्रेम कहां पहुंचा है। हां कभी कभी ऐसा सच में होता है कि अपने ही बनाए गए प्रेम के लोक से निकलना बहुत मुश्किल हो जाता है। भले ही फिर उसकी नियति जो भी हो कविताएं कई स्तर पर सिर्फ बदलती हुई सभ्यता और संस्कृति का संकेत होती हैं, कविताओं का काम चिंतन करना है ताकि आगे आने वाले समय में हम हमारी सभ्यता को और ज्यादा श्रेष्ठता की ओर ले जा सकें।

इस कविता में प्रेम कहीं छल नजर नहीं आ रहा है जो आज हमारे समाज में व्यापक रूप से देखने को मिल रहा है। 21वीं सदी में ही कोरोना काल में हमें कई तरह के भ्रष्टाचारों से दो-चार होना पड़ा। मानव सभ्यता मर कर खत्म होती उससे पहले ही मानव सभ्यता का चरित्र मरकर खत्म हो रहा था। नैतिकता धू-धू कर जल रही थी। सड़कों पर लाखों की संख्या में पैदल चलने वाले मजदूर धूल का गुबार उड़ाते हुए हमारी छद्म और कुटिल नीतियों को रौंदकर आगे बढ़ रहे थे। उन्होंने अपने दम पर अपना जीवन बचाया। चिकित्सा जगत ने जितने लोगों का जीवन बचाया उससे कहीं ज्यादा लोगों की जीवनलीला समाप्त कर दी। किडनी लीवर बेचने वाले कई गिरोह पकड़ाए। 10–20 रुपए की मिलने वाली दवाएं सैकड़ों हजारों रुपयों का आंकड़ा छू रही थीं। इसी के साथ कोरोनावायरस ने हमारे छद्म चरित्र को उघाड़कर नंगा करके सबके सामने रख दिया था।

निष्कर्ष - 21वीं सदी का हमारा सपना पुनः विश्वगुरु बनना तो है पर देश सामाजिक हकीकत कुछ और ही बयां कर रही है। हमें सामाजिक रूप से अभी और संगठित होने की जरूरत है। जातीय भेदभाव, वैमनस्य, दुर्भावनाओं से जीतने की जरूरत है। तब जाकर हम किसी भी दिशा में संगठित रूप से आगे बढ़ सकते हैं। विश्वगुरु बनने के लिए हमने क्या खाका तैयार किया है? इस पर सोचने की आवश्यकता है। विश्व गुरु बनने का हमारा ठोस आधार क्या है? इस पर सोचने की महती आवश्यकता है। खाली बातें करने से विश्व गुरु बनना तो असंभव होगा। उस दिशा में हमें कई शोध, चिकित्सा, योग, अध्यात्म, ज्ञान और विज्ञान की दिशा में कुछ श्रेष्ठ करना होगा। विश्व मानवतावाद के लिए धार्मिक, सांप्रदायिक और जातीय कट्टरताओं को खत्म करके सद्भावना, नैतिकता और प्रेम का आदर्श प्रस्तुत करना होगा। 21 सदी के प्रारम्भिक दो दशकों की कविताओं में यही समस्याएं देखने को मिलती हैं। ये कविताएं इन्हीं दिशाओं की ओर संकेत करती नजर आती हैं कि हम इन समस्याओं से मुक्त होकर समाज को एक श्रेष्ठता की दिशा की ओर लेकर कब जायेंगे।

सन्दर्भ सूची :

1. कविता से लंबी कविता, विनोद कुमार शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृष्ठ 11-12
2. वही पृष्ठ 15
3. वही पृष्ठ 3
4. वही पृष्ठ 67
5. वही पृष्ठ 78
6. वही पृष्ठ 116
7. नाव डूबने से नहीं डरती, लीना मल्होत्रा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 39
8. वही पृष्ठ 45
9. वही पृष्ठ 73
10. वही पृष्ठ 77
11. घर अकेला हो गया, मुनव्वर राना, वाणी प्रकाशन, 2010, पृष्ठ 19
12. वही पृष्ठ 21

13. वही पृष्ठ 83
14. वही पृष्ठ 134
15. बाघ और सुगना की बेटी, अनुज लुगुन, वाणी प्रकाशन 2017, पृष्ठ 24
16. वही पृष्ठ 46
17. जड़ों की जमीन, जसिंता केरकेट्टा, भारतीय ज्ञानपीठ, 2018, पृष्ठ 16
18. वही कवर पृष्ठ से
19. वही पृष्ठ 114
20. वही पृष्ठ 122
21. वही पृष्ठ 142
22. अम्बर में अबाबील संग्रह, उदय प्रकाश, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2019, आत्मकथ्य से
23. वही पृष्ठ, आत्मकथ्य से
24. वही पृष्ठ, 44
25. वही पृष्ठ, 121
26. वही पृष्ठ, 28
27. प्रतिरोध के स्वर, सुशीला टाकभौरे, शुभदा बुक्स, दिल्ली, 2021, पृष्ठ 29
28. वही पृष्ठ 65
29. वही पृष्ठ 65
30. वही पृष्ठ 81
31. वही पृष्ठ 110
32. वही पृष्ठ 123
33. पथरीली राहों से 37
34. वही पृष्ठ 46
35. वही पृष्ठ 189
36. समकाल की आवाज, विमलेश त्रिपाठी की चयनित कविताएँ, न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन नई दिल्ली, संस्करण 2022 संग्रह के प्रकाशकीय से
37. वही पृष्ठ 18
38. वही पृष्ठ 23
39. वही पृष्ठ 24
40. कालीचरण स्नेही, प्रतिनिधि कविताएँ काव्य संग्रह, वाणी प्रकाशन, 2022, पृष्ठ 94
41. वही पृष्ठ 116
42. वही पृष्ठ 156
43. वही पृष्ठ 166
44. डायरी का पीला वरक, सुशील द्विवेदी, हंस प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2021 पृष्ठ 02